कहानी

थप्पड़

कॉलेज की क्लासरूम नंबर 12 में दोपहर के 2 बज रहे थे। पंखा धीरे-धीरे चल रहा था और बाहर जून की तपती हवा दीवारों को तपाए जा रही थी। इकोनॉमिक्स की क्लास चल रही थी। प्रोफेसर शर्मा ब्लैकबोर्ड पर ग्राफ बना रहे थे। तभी पीछे की बेंच से एक आवाज आई - 'सर, ये फॉर्मूला गलत है। ' पूरी क्लास ने पलटकर देखा। बोलने वाली थी निशा।

दुबली-पतली, सादे सूती सूट में, चेहरे पर कोई मेकअप नहीं, आँखों में सिर्फ किताबों की चमक और आत्मविश्वास। मिडिल क्लास घर की लड़की। पिता स्कूल में मास्टर थे। प्रोफेसर शर्मा ने देखा, मुस्कुराए और कहा, 'बिलकुल सही। निशा, तुम ही बोर्ड पर आकर समझाओ। ' निशा उठी, चॉक उठाया और दो मिनट में पूरा ग्राफ सुधार कर समझा दिया। क्लास में हल्की सरसराहट हुई। टॉप करने वाली लड़की वही थी। हर महीने की मेरिट लिस्ट में उसका नाम पहले नंबर पर आता था। लेकिन सामने की बेंच पर बैठी रिया का चेहरा तमतमा गया। रिया - कॉलेज की सबसे अमीर लड़की। ब्रांडेड कपड़े, मोबाइल का लेटेस्ट मॉडल। पिता शहर के बड़े बिल्डर थे। कॉलेज में उसका नाम चलता था। कोई प्रोफेसर उसकी बात टालता नहीं था। उसे बर्दाश्त नहीं हुआ कि एक 'गरीब लड़की' उससे आगे निकल जाए।

'बैठ जाओ निशा। ज्यादा होशियार बनने की जरूरत नहीं है,' रिया ने ताना मारा। निशा ने कुछ नहीं कहा। चॉक रखकर अपनी जगह बैठ गई। लेकिन रिया का गुस्सा शांत नहीं हुआ। 'सर, इन्हें बाहर निकालिए। क्लास डिस्टर्ब कर रही हैं,' उसने खड़े होकर कहा। प्रोफेसर शर्मा असहज हुए। 'रिया, बैठ जाओ। निशा ने गलत नहीं कहा। ' बस यही बात रिया को चुभ गई। उसने गुस्से में उठकर निशा की बेंच तक कदम बढ़ाए और सबके सामने जोरदार थप्पड़ जड़ दिया। ड्रुधम्ड्रु की आवाज पूरे कमरे में गूँज गई। क्लास में सन्नाटा छा गया। निशा के गाल पर लाल निशान उभर आया। आँखों में आँसू भर आए, लेकिन उसने पलटकर एक शब्द नहीं कहा। बैग उठाया और बिना पीछे देखे क्लास से निकल गई। रिया विजयी भाव से अपनी जगह बैठ गई। 'ज्यादा उछलती थी। अब पता चलेगा,' वह धीरे से बुदबुदाई। उस दिन के बाद रिया का नाम पूरे कॉलेज में चलने लगा - 'जो चाहे कर लेती है '। प्रोफेसर भी कुछ नहीं बोले। उसका बाप कॉलेज

का डोनर था। निशा ने भी कोई शिकायत नहीं की। उसने बस एक काम किया - और ज्यादा मेहनत। उस साल निशा यूनिवर्सिटी टॉपर बनी। रिया सप्लीमेंट्री में फेल हो गई। 15 साल बाद दिल्ली का मौसम सुहावना था। अक्टूबर की हल्की ठंड और धूप। उसी पुराने कॉलेज का ऑडिटोरियम सजा हुआ था। एनुअल अलुमनी मीट और फंक्शन था। 25 साल बाद बैच इकट्ठा हुआ था। मुख्य अतिथि के तौर पर स्टेज पर खड़ी थीं - *डॉ. निशा वर्मा*। सादगी भरी ऑफ-व्हाइट कांजीवरम साड़ी, गले में सिर्फ एक पतली सोने की चेन, चेहरे पर वही शांत मुस्कान। अब वह दिल्ली के एक प्रतिष्ठित कॉलेज में अर्थशास्त्र की प्रोफेसर थीं। पीएचडी कर चुकी थीं। दो किताबें लिख चुकी थीं। छात्रों के बीच उनका नाम इज्जत से लिया जाता था। उन्होंने माइक संभाला: 'आज मैं यहाँ खड़ी हूँ, तो इसके पीछे एक थप्पड़ है। ' हॉल में सन्नाटा छा गया। '15 साल पहले इसी कॉलेज की क्लासरूम नंबर 12 में मुझे सबके सामने थप्पड़ मारा गया था। वजह सिर्फ इतनी थी कि मैं टॉपर बन गई थी। उस दिन मैंने जवाब नहीं दिया। घर आकर रोई, फिर किताबें खोलीं। मैंने तय किया कि मैं अपने आँसुओं को स्याही बनाऊँगी और अपनी मेहनत से जवाब लिखूँगी। ' 'उस थप्पड़ ने मुझे तोड़ा नहीं, बनाया। अगर उस दिन मैं गुस्से में पलटकर मारती, तो शायद मेरा गुस्सा शांत हो जाता। लेकिन मेरा भविष्य खत्म हो जाता। चुप रहने से मैंने वक्त को अपना हथियार बना लिया। ' हॉल तालियों से गूँज उठा। कई पुराने छात्र-छात्राओं की आँखें नम हो गईं। भीड़ में पीछे की पंक्ति में खड़ी एक औरत का चेहरा सफेद पड़ गया। वही रिया। रिया को कॉलेज के प्रिंसिपल ने खासतौर पर बुलाया था - 'पुराने स्टूडेंट्स आने वाले हैं, आ जाओ।' उसे क्या पता था कि स्टेज पर वही निशा होगी। रिया की हालत अब वैसी नहीं थी। कॉलेज के बाद वह पढ़ाई पूरी नहीं कर पाई। पिता का बिजनेस मंदी में डूब गया। शादी हुई, लेकिन ससुराल में नहीं निभी। अब वह इसी कॉलेज के बाहर ट्यूशन पढ़ाकर गुजारा करती थी। घमंड की जगह आँखों में एक खालीपन आ गया था। फंक्शन खत्म हुआ। सब डॉ. निशा से मिलने, फोटो खिंचवाने उमड़ पड़े। रिया दूर खड़ी देखती रही। 15 साल का वक्त, गाल पर पड़ा वो थप्पड़, और आज का ये मंच - सब आँखों के सामने घूम गया। हिम्मत करके वह स्टेज के पास गई। 'मैम... मैं रिया हूँ। ' निशा ने देखा। एक पल को ठिठकीं, फिर धीरे से बोलीं, 'हाँ, पहचान गई। ' रिया की आँखों में आँसू आ गए। 'माफ कर दो मैम। उस दिन मैं घमंड में थी। पैसा, शोहरत, सब सिर पर चढ़ा था। मुझे लगा कोई मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। ' निशा ने हल्की मुस्कान से कहा: 'माफ़ी मत माँगो रिया। उस थप्पड़ का शुक्रिया। अगर तुमने मारा न होता, तो शायद मैं आज यहाँ न होती। उस दिन मैंने तय किया कि मैं किसी से बदला नहीं लूँगी। मैं खुद को इतना बड़ा बनाऊँगी कि मेरा नाम ही मेरा जवाब बने। ' 'वक्त ने हिसाब बराबर कर दिया। तुम अपने रास्ते चलो, मैं अपने रास्ते। नफरत रखने से कुछ नहीं होता। ' कहकर निशा आगे बढ़ गई। छात्रों से मिलने। रिया वहीं खड़ी रही। कॉलेज का गेट, वही गलियारा, वही क्लासरूम नंबर 12... सब वैसा ही था। बदले थे तो सिर्फ लोग और उनकी औकात।

डुनरेंद्र भारती, वरिष्ठ पत्रकारद्रु

संवेदनहीन संवाद

' हलो!' -- मोबाइल पर रिंगटोन सुनकर आरती अपने पर्स से मोबाइल निकाल कर सुनने लगी।---' हलो दीदी! क्या समाचार है,? ' 'समाचार ठीक नहीं है। मैं अस्पताल से बोल रही हूँ। ये बीमार हैं। ' क्या हुआ ? ' ' तेरी आरती ठीक से नहीं आ रही है। रुक, मैं दोबारा फोन लगाती हूँ '-- आरती मोबाइल बंद कर दोबारा फोन लगायी और स्पष्ट सुनने के लिए स्पीकर ऑन कर दी। क्या हुआ प्रीतम भाई साहब को। ' हार्ट एटैक आया था। घर में वेहोश होकर गिर गये थे। कुछ सेकेंड के लिए धरकन भी बंद हो गई थी। घबरा कर हम यहां आ गये हैं। इलाज के बाद अब नार्मल हैं। सो रहे हैं। '---- वह मोबाइल के साथ कमरा में ही बैठ गई। बोली --- ' डाक्टर का कहना है बहुत अधिक क्लोकिंज है। ' उधर से आवाज आ रही थी----' धीरज रखना दीदी। यही बिमारी हमारे पड़ोसी शर्मा जी को हुई थी। आप्रेशन भी हुआ था। कहां बच पाये------' आरती बात करती रही कि उसे पति के कराहने की आवाज सुनाई दी। वह दौड़कर वहां पहुंची। प्रीतम की सांसे बहुत तेज चल रही थी। उसकी सिर और हृदय उपर- नीचे होने लगा था। आरती ने तुरंत घंटी बजायी। नर्स और डाक्टर दौड़ कर आये। बोले -- 'बी पी बुस्टअप हो गया है।' तुरंत आक्सीजन लगा कर उसे आइ सी यू में ले गये। आरती मोबाइल देखती रह गई। उसे पहली बार लगा कि कुछ शब्द दुआ नहीं होते।

- पंडित चन्द्रशेखर, हजारीबाग।

हसबैंड आप हैं या आपके हैं

व्यंग्य

अरण्यरोदन

हसबैंड आप हैं या आपके हैं ? क्योंकि हसबैंड के साथ कोई तीसरी स्थिति तो होती ही नहीं है।हर विवाहित स्त्री के पास उसका अपना निजी ,इकलौता, सस्ता ,सुंदर, टिकाऊ,हसबैंड होता है जिसका वह हसंकर बैंड बजाती रहती है।चूंकि वह उसके अपने निजी उपयोग के लिए होता है इसलिए वह किसी दूसरे को उसका उपयोग नहीं करने देती और न किसी के साथ शेयर करती है।अगर ऐसा न हो तो फिर बैंड नहीं युद्ध के नगाड़े बजने लगते हैं जिनकी गूंज दूर-दूर तक सुनाई देती है। अपने घर-परिवार से लेकर पूरे मोहल्ले तक ।फिर कोई भी चैन से नहीं रह पाता ,न चैन से खा पाता है और न चैन से सो पाता है। हसबैंड वाइफ से बंधा होता है इसलिए वह भी उसे अपने साथ अपनी चोटी की तरह लटकाए रखती है ।बालों में हेयर पिन की तरह उलझाए-लगाए रखती है और जहं कहीं कुछ खुटका होता है वह उसे अपने बालों में रबर बैंड की तरह दो-तीन बार मोड़कर कस देती है।इस छोटी सी कार्यवाही से वह निश्चिंत हो जाती है और कभी कभी उसे 1947 की आज़ादी वाली फीलिंग भी आने लगती है । कारण हसबैंड भी इधर-उधर मूव करने की स्थिति में नहीं रहता।

हसबैंड अंग्रेजी संज्ञा है ,नाउन ।इसके साथ मेन शब्द को और जोड़ दें तो हसबैंडमेन का अर्थ खेतिहर मजदूर या कृषक होता है, जो कि वास्तव में हस्बैंड भी होता ही है फिर मेन शब्द जोड़ने की जरूरत क्यों पड़ी मेरी समझ में नहीं आया।हस्बैंड का अर्थ पति और स्वामी के अलावा किफ़ायत या संभाल कर खर्चे से जुड़ा है इसलिए महिलाएं इसे किफायत से खर्च करती हैं मतलब प्रबंधन में मैनेजमेंट में बचाकर रखती है । बैंड बजाने की ध्वन्यात्मक क्रिया में अलग-अलग वाद्य यंत्रों का उपयोग होता है और उनकी ध्वनि भी भिन्न-भिन्न होती है।इसी तरह हस्बैंड भी अलग-अलग तरह के होते हैं और उनकी आवाज भी अलग-अलग तरह की सुनने को मिलती है।पशु-पक्षियों का जिक्र न भी करें तो बोलने में ऐसे अटकते हैं जैसे पहली बार कोई गवाह किसी वकील की जिरह का सामना कर रहा हो या किसी दफ्तर का कोई प्यून अपने अधिकारी के सामने खड़ा हो या कोई मास्टर निरीक्षण के समय जिला शिक्षा अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत होकर अपने होंठ हिलाता है।यों कुछ हसबैंड शब्द की गरिमा को यथोचित सम्मान देते हुए घर में पत्नी के आगे ऐसे भी बोल लेते हैं जैसे राष्ट्रीयकृत बैंक का क्लर्क अपने मैनेजर के सामने बोलने का साहस कर लेता है ।फिर भी अधिकांश हसबैंड मुख्यमंत्री के सामने मंत्री की तरह ही मुंह खोलते मिलते हैं। हस्बैंड शब्द के दोनों अंशों को उपसर्ग और प्रत्यय की तरह लें तो बैंड लगाये भी जाते हैं और बजाये भी जाते हैं। बैंड के समस्त वाद्य यंत्रों को ध्वनि उत्पन्न करने की तकनीक और उनकी बनावट के आधार पर चार श्रेणियां में बांटा जा सकता है ।तत, सुषिर ,घन या आघात एवं अवनद्ध।मेरे गहन अध्ययन ,सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि ,लंबे अनुभव और गहरे विवेक से हस्बैंड को भी ऐसे चार वर्गों में बांट सकते हैं। तत सुषिर घन एवं अवनद्ध।

प्रथम वर्ग में तत् या तार वाद्य यंत्र आते हैं।जैसे सितार ,वीणा ,सारंगी आदिइनमें तारों के कंपन या तारों को हल्का सा छूने पर बेहतरीन ध्वनि सुनाई देती है जो मधुर ,कोमल व आकर्षक होती है।इस श्रेणी में उन हसबैंड को रखा जा सकता है जिनकी पत्नियां बेहद खूबसूरत होती हैं या जो खुद चाकलेटी होते हैं।द्वितीय सुषिर अर्थात फूंक वाद्य यंत्र होते हैं।इन्हें फूंककर बजाना पड़ता है । इनमें मुंह से हवा भरने के बाद कुछ दूसरे रास्तों से निकलने पर इनकी आवाज निकलती है। जैसे बांसुरी ,शहनाई ,हारमोनियम ,तुरही ,सैक्सोफोन इत्यादि ।अगर आपको याद हो और जानकारी हो तो इन्हीं में एक पुंगी भी होती है ।इसी से इस श्रेणी के हसबैंड को समझ सकते हैं।तृतीय घन या आघात वाद्य हैं।यह ठोस धातु या लकड़ी के बने होते हैं इन्हें आपस में टकराकर या पीटकर ध्वनि उत्पन्न करते हैं इनमें मंजीरा ,झांझ ,करताल आदि आते हैं ।इस तरह के हस्बैंड कुछ कठोर प्रवृत्ति के यानी हार्ड माने जा सकते हैं।और अधिक स्पष्ट कथन इनकी मालकिन कर सकती है। अंतिम वर्ग में अवनद्ध या ताल वाद्य यंत्र आते हैं।तबला ,ढोलक ,डमरू ,ढोल ,नगाड़ा आदिइन्हें चमड़े से मढ़ कर बनाया जाता है और अपने हाथों से या लकड़ी के डंडों से ठोका जाता है ।दूसरे शब्दों में इन्हें ठोकना या पीटना पड़ता है और चोट पहुंचाकर ही आवाज निकलवाई जाती है ।

आप समझ रहे हैं न मैं किनकी बात कर रहा हूं और क्या कहना चाहता हूं? इन्हें बजाना भी एक कला है जिसमें ताकत मतलब स्टैमिना भी लगाना पड़ता है।अब अधिक क्या कहूं ?जो जैसा हो या जिसके जैसे हों।समझदार को तो इशारा काफी है।

डॉ.महेन्द्र अग्रवाल
स. नई गज़ल
सदर बाजार शिवपुरी म.प्र.
473551
मो.9425766485

आलोचकों के बीच शांति वार्ता

व्यंग्य

तीसरी आँख

आजकल युद्ध हर मोर्चे व हर मंच पर चलते रहते हैं। पहले भी चलते होंगे, मैंने पहले अपनी आंखों से नहीं देखे। इतिहास में ज्यादा पढ़ता नहीं। आजकल छोटी छोटी बात पर युद्ध की स्थितियाँ निर्मित हो जाती है। कुछ युद्ध होते है जिसे हम आँखों से देख सकते है, लेकिन कुछ युद्ध ऐसे भी होते हैं जिन्हें हम आँखों से नहीं देख सकते हैं। दूसरी तरह के अदृश्य युद्ध हमें आँखों से पढ़ने पड़ते हैं। ये युद्ध बड़े जटिल व भयंकर होते हैं। इन युद्धों में ऐसा लगता है जैसे कोई स्लीपर सेल की तरह आपके पीछे पड़ा। यहां अपनी बात को ज्यादा लंबी ना खींचते हुए बता दूं कि ऐसे युद्ध आलोचकों के बीच चलते हैं! हाँ वहीं लेखकों की एक ऐसी बटालियन जो आलोचक कहलाती हैं। इस तरह के लेखक योद्धा खुद कुछ मौलिक लेखन नहीं करते हैं लेकिन जो मौलिक रचनाकार व लेखक होते हैं उनके लेखन में कमी देखने का कार्य करते हैं। इनमें से कुछ ईमानदार आलोचक लेखक की रचना को पाठकों के बीच उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं।

लेकिन ऐसे आलोचक विलुप्त होने की कगार पर है। सरकार को इन्हें संरक्षित करने के लिए कोई योजना लाना चाहिए। ये आपको साहित्यिक अकादमियों, शिक्षा संस्थानों में कम ही मिलेंगे। पुरस्कारों की दौड़ से भी ये दूर ही रहते हैं। यहां भी इनका सामना आलोचकों से ही ज्यादा रहता है।

छिद्रान्वेषी स्लीपर आलोचक इनमें ज्यादा मात्रा में पाए जाते है। इनके बीच युद्ध बड़ा भयानक होता है। लेखक की मूल बात को जनता तक नहीं पहुंचने देना इनकी प्रमुख रणनीति होती है। लंबे समय से ये युद्ध प्रेमी अपनी लेखनी से विश्व में अशांति फैलाने के लिए लगे हुए थे। लेकिन आखिरकार इन्हें भी अब लगते थे। इन्हें अब शांति चाहिए। जब पूरी दुनिया में अशांति फैलाने में असफल हो गए तो इन्हें शांति का मार्ग दिख रहा है। इन्हीं आलोचकों ने कितने ही लेखकों की रचनाओं को शुरुआत में कूड़ेदान में फेंकने का निर्णय सुना दिया था। ओर फिर बाद में रचना की लोकप्रियता पर स्वयं को इसके लिए अधिकारी बताते हैं। इनके आपस के तनाव में शांतिप्रिय लेखक का शिकार होता रहा है। इन आलोचकों का जलडमरूमध्य साहित्यिक अकादमियां, विश्वविद्यालय की पीठे, शोध संस्थान जैसे साहित्यिक सकरे मार्ग है, इन्हीं से ये अपनी दुकानें चलाते हैं। यही से ऐसे आलोचक अपनी साहित्यिक शक्ति का खाद पानी लेते हैं। अब यदि ये आलोचक शक्तिशाली होने के बाद भी शांति की बात कर हैं तो जरूर इनकी आलोचना की धार खत्म होने लगी है जैसे तेल व गैस के युद्ध में कुछ तथाकथित महाशिक्तयों के तेल निकल गया हैं और अब वे शांति-शांति की बंसी बजाते फिर रहे है। ये इस वार्ता को भी अपनी नैतिक व साहित्यिक जीत बताऐंगे। अपनी हताशा को त्याग व धैर्य के तराजू पर अपनी आलोचनाओं के माध्यम से सही सिद्ध करने का प्रयास करेंगे। हो सकता है इस शांति वार्ता के बदले आगे ये कोई बड़ा पुरस्कार भी पा जाए। आखिर ऐसे आलोचक हर बात पर अपनी ही बात को सही सिद्ध करने के लिए आलोचक जो बनता है। ऐसे आलोचकों के बीच शांति की वार्ता उनका निजी स्वार्थ ज्यादा है ना कि शांति के मार्ग की ओर लौटना। साहित्य के शांति मार्ग में ऐसे ही आलोचक अपने अपने जलडमरूमध्य की खोज निरंतर करते रहते हैं। इनके द्वारा शांति की बात करना अगले किसी युद्ध की पटकथा पर विचार करने जैसा ही है...!

लेकिन ऐसे आलोचक विलुप्त होने की कगार पर है। सरकार को इन्हें संरक्षित करने के लिए कोई योजना लाना चाहिए। ये आपको साहित्यिक अकादमियों, शिक्षा संस्थानों में कम ही मिलेंगे। पुरस्कारों की दौड़ से भी ये दूर ही रहते हैं। यहां भी इनका सामना आलोचकों से ही ज्यादा रहता है।

छिद्रान्वेषी स्लीपर आलोचक इनमें ज्यादा मात्रा में पाए जाते हैं। इनके बीच युद्ध बड़ा भयानक होता है। लेखक की मूल बात को जनता तक नहीं पहुंचने देना इनकी प्रमुख रणनीति होती है।

भूपेन्द्र भारतीय
205, प्रगति नगर,सोनकच्छ,
जिला देवास,
मध्यप्रदेश(455118)
मोब. 9926476410

व्यंग्य

वक्रासन

सफाई के प्रकार

नालों की सफाई दो प्रकार की होती हैं। पहले प्रकार की सफाई के लिए नाले में उतरना पड़ता है या कम से कम नाले में कुदाल आदि का प्रयोग करना होता है। इस तरह की सफाई करने के लिए कुछ विशेष अभागे लोग अभिशप्त होते हैं। कुछ तो बड़े नाले और सेप्टी टैंक को साफ करने के दौरान काल कवलित भी हो जाते हैं। दूसरे प्रकार की सफाई में न तो नाले में उतरना पड़ता है न ही कुदाल फावड़ा आदि का प्रयोग करना होता है। इसमें बस कुछ बिल-सिल का जुगाड़ करना होता है। इसे 'कागजों पर नाले की सफाई' के नाम से जाना जाता है। कागज पर बहुत से काम होते हैं। सड़क मरम्मत, पौधा रोपण आदि अनेक कार्य हैं जो कागज पर ही किए जाते हैं। कागज पर होने का मुख्य लाभ यह होता है कि बिना हींग और फिटकरी के रंग चोखा आता है। पहले प्रकार की सफाई में सफाई करने वाले को थोड़ा बहुत और साफ

करवाने वाले को बहुत बहुत लाभ होता है। दूसरे प्रकार की सफाई में सफाई करवाने वाले को ही लाभ होता है। इस प्रकार की सफाई प्रायः मानसून के दौरान करवाई जाती है। चूंकि सफाई कागजों पर ही करवाई जाती है अतः नालियां ज्यों का त्यों बजबजाती रहती हैं। और ऐसे में बरसाती पानी को सड़कों पर पर्यटन का आनंद मिलता है। और सड़क पर चलने वाले वाहनों के टायरों को तथा पैदल चलने वाले राहगीरों के चरण पादुकाओं को उस पानी से पखारा जाता है। हर वर्ष मानसून के पहले घोषणा की जाती है कि तैयारी पूरी कर ली गई है। यदि मानसून कमजोर होता है तो फिर तैयारी करने वालों की जय जय होती है। यदि जरा सी भी बारिश हो जाए तो फिर हर वर्ष समाचार छपते हैं कि तैयारियों की पोल खुल गई। पता नहीं पोल कैसे एक दम से पैराशूट की तरह खुल जाता है।

और फिर पोल कब बंद हो जाता है यह तो पता भी नहीं चलता। जिम्मेवार लोगों की ओर से दावा किया जाता है कि कई बार सफाई करवाई गई फिर भी नाले भर जा रहे हैं।

अब उन्हें कौन बताए कि कागजों पर सफाई होने से नाले साफ नहीं होते। इसके लिए नाले की वास्तविक सफाई करनी होती है और जो गाद निकलता है उसे हटाना भी पड़ता है।

विनय कुमार पाठक, जयपुर

कहानी

आखिरी चिट्ठी

बरसात की एक उदास शाम थी। आसमान में बादल इस तरह छाए हुए थे जैसे किसी ने पूरे शहर पर धुंधली चादर डाल दी हो। अद्वैत अपने पुराने पुश्तैनी घर की सफाई कर रहा था। दादाजी के निधन के बाद यह पहली बार उस घर में आया था। घर के हर कोने में बीते समय की गंध थी। पुरानी अलमारियाँ... पीली पड़ चुकी तस्वीरें... लकड़ी की चरमराती सीढ़ियाँ... और ढेर सारी यादें। सफाई करते हुए उसे एक लोहे का छोटा-सा संदूक मिला। उसने उत्सुकता से उसे खोला। अंदर कुछ पुराने दस्तावेज और एक लिफाफा रखा था। लिफाफे पर लिखा था—'जिसे यह चिट्ठी मिले, कृपया इसे उसकी मंजिल तक पहुँचा दें। ' नीचे एक नाम था— 'संध्या ' और तारीख थी— 14 अगस्त 1978। अद्वैत हैरान रह गया। लगभग पचास साल पुरानी चिट्ठी। जो कभी अपनी मंजिल तक पहुँची ही नहीं। अद्वैत पेशे से इतिहास का शोधार्थी था। पुरानी चीज़ों में उसकी विशेष रुचि थी। उसने चिट्ठी खोली। उसमें लिखा था— 'प्रिय संध्या, अगर यह पत्र तुम्हें मिले तो समझना कि मैंने आखिरी क्षण तक तुम्हारा इंतज़ार किया। परिस्थितियों ने मुझे तुमसे दूर कर दिया, मगर मेरा मन कभी तुमसे दूर नहीं हुआ। अगर अगले जन्म जैसी कोई चीज़ होती है, तो मैं फिर तुम्हें ढूँढने आऊँगा। – तुम्हारा, अमर ' बस इतना ही। कुछ पंक्तियाँ... लेकिन उनमें पूरा जीवन छिपा था। उस रात अद्वैत सो नहीं पाया। कौन थे अमर और संध्या? क्यों नहीं पहुँच पाई यह चिट्ठी? क्या वे फिर कभी मिले? या यह प्रेम अधूरा रह गया? अगले दिन उसने खोज शुरू की पुराने रिकॉर्ड खंगोले। नगर निगम के दस्तावेज़ देखे। लोगों से पूछताछ की। कई दिनों की मेहनत के बाद उसे पता चला कि संध्या अब जीवित नहीं थीं। तीन वर्ष पहले उनका निधन हो चुका था।

मिला तो उसने पूरी कहानी सुनाई। मृणालिनी कुछ देर तक चुप रही। फिर बोली— 'नानी

कहानी

विना किसी बहाने। दोनों ने मिलकर अमर और संध्या की कहानी खोजनी शुरू की। पुराने गाँवों में गया। बुजुर्ग लोगों से मिले। धूल भरे रिकॉर्ड देखे। और जो कहानी सामने आई, वह किसी उपन्यास से कम नहीं थी। अमर और संध्या एक-दूसरे से प्रेम करते थे। लेकिन परिवारों की दुश्मनी के कारण उनका विवाह नहीं हो सका। अमर सेना में भर्ती हो गया। संध्या की शादी कहीं और कर दी गई। अमर ने यह आखिरी चिट्ठी भेजी थी। लेकिन वह कभी पहुँच नहीं पाई। और दोनों अपनी-अपनी ज़िंदगी जीते रहे। कहानी जानने के बाद कई दिनों तक अद्वैत और मृणालिनी उदास रहे। उन्हें लगता था जैसे वे किसी अधूरी प्रेमकथा के गवाह बन गए हों। एक दिन मृणालिनी ने कहा— 'क्या तुम्हें नहीं लगता कि कुछ कहानियाँ पूरी नहीं होतीं, फिर भी सुंदर होती हैं? ' अद्वैत मुस्कुराया। 'हाँ... लेकिन कुछ कहानियाँ शायद अधूरी कहानियों को पूरा करने के लिए जन्म लेती हैं। ' मृणालिनी ने उसकी ओर देखा। पहली बार। वैसे नहीं जैसे एक परिचित को देखा जाता है। कुछ अलग तरह से।

कुछ गहराई से। समय बीतता गया। दोनों एक-दूसरे के जीवन का हिस्सा बन गए। उनकी दोस्ती प्रेम में बदल गई। लेकिन इस बार कोई चिट्ठी रास्ते में नहीं खोई। कोई गलतफहमी नहीं हुई। कोई दूरी दीवार नहीं बनी। शादी के बाद एक दिन वे अमर और संध्या की पुरानी समाधियों पर गए।

दोनों कब्रें एक ही कब्रिस्तान में थीं। बस कुछ दूरी पर। शायद जीवन ने उन्हें अलग रखा था। लेकिन समय ने अंततः उन्हें एक जगह पहुँचा दिया। मृणालिनी ने फूल रखते हुए कहा— 'आपकी कहानी अधूरी थी... लेकिन शायद उसी ने हमारी कहानी लिख दी। ' अद्वैत ने उसका हाथ थाम लिया।हवा का एक झोंका आया। पेड़ों के पत्ते सरसराए। और उन्हें लगा जैसे कहीं दूर कोई पुरानी चिट्ठी आखिरकार अपनी मंज़िल तक पहुँच गई हो।

मुकेश कुमार बिस्सा
जैसलमेर